ज्ञान का स्वरूप

डंकन प्रिचार्ड

- ज्ञान एवं प्रामाणिकता
- प्रामाणिकता की गूढ़ प्रकृति
- अगरिप्पा की त्रिविधा
- अनन्तवाद
- सुसंगततावाद
- आधारवाद

ज्ञान और प्रामाणिकता

एक ऐसी मान्यता चुनें जिसे आप मानते हों, जिसकी सत्यता के प्रति आप उतने ही सुनिश्चित हों जितना कि किसी भी अन्य चीज के प्रति आप आश्वस्त हैं। उदाहरण के तौर पर, यह मान्यता कि पृथ्वी अपनी कक्षा में सूर्य के चारों ओर घूमती है। यदि इस बात की सत्यता के प्रति आप पूर्णतः सुनिश्चित हैं, तब आप अन्त:बोध से इस मान्यता (belief) को सही मानेंगे और यह मानेंगे कि यह पूर्णत: 'प्रामाणिक' (justified) है। अब आप स्वयं से यह प्रश्न पूछें : इस मान्यता को क्या प्रमाणित करता है?

यह प्रश्न ज्ञानमीमांसा के लिए अहम है क्योंकि, जैसा कि हमने अध्याय 3 में देखा, यद्धपि गेटियर के उदाहरण यह दर्शाते हैं कि प्रामाणिकता (सच्ची मान्यता के साथ) ज्ञान के लिए

पर्याप्त नहीं है, किन्तु कम से कम यह सम्भाव्य है कि प्रामाणिकता ज्ञान के लिए 'आवश्यक' है। तदनुसार, यह समझने के लिए कि ज्ञान का गठन किससे होता है यह समझना आवश्यक है कि प्रामाणिकता का गठन किससे होता है। हालाँकि, जैसा कि हम देखेंगे कि प्रामाणिकता की प्रकृति को निर्दिष्ट करना बहुत कठिन है।

प्रामाणिकता की गूढ़ प्रकृति

हमारी इस मान्यता को क्या प्रमाणित करता है कि पृथ्वी अपनी कक्षा में सूर्य के चारों तरफ चक्कर लगाती है– इस प्रश्न का एक सम्भावित उत्तर यह हो सकता है कि इसे कुछ भी प्रमाणित नहीं करता है; कि इस मान्यता को सत्य मानने के लिए किसी अन्य आधार की आवश्यकता ही नहीं है। परन्तु, जहाँ तक अधिकतर मान्यताओं का प्रश्न है (यदि सभी का नहीं भी है), यह सम्भावना बहुत अधिक सम्भाव्य नहीं है।

मान्यता को एक घर के तौर पर समझिए। जैसे किसी घर को आधार नहीं मिले तो वह गिर जाता है। ठीक यही मान्यता पर लागू होता है। यदि मान्यता का कोई मजबूत आधार ना हो– ऐसा कुछ भी ना हो जो उसे प्रमाणित करता हो –तब मान्यता को उचित नहीं माना जा सकता और वह 'गिर' जाती है। आखिरकार, यदि कोई व्यक्ति किसी भी प्रकार के मजबूत आधारों के सम्बल के बिना किसी मान्यता को समुचित रूप से धारण कर सकता है, तो वह हमारे लिए तर्कसंगत और तर्कहीन अभिकर्ताओं की मान्यताओं के बीच किसी भी प्रकार का ज्ञानमीमांसात्मक अन्तर करना नामुमकिन कर देगा।

उदाहरण के तौर पर, एक बच्चा बिना किसी विशेष आधार के यह मान सकता है कि चाँद एक गुब्बारा है। यदि हम अपनी इस मान्यता को किसी अन्य आधार का सहारा लिए बगैर मान सकते हैं कि पृथ्वी अपनी कक्षा में सूर्य का परिक्रमण करती है, तो पृथ्वी के सम्बन्ध में उस बच्चे की मान्यता और हमारी मान्यता समान ही हो जाती है। हालाँकि, हमारी मान्यता अवश्य ही उस तरह प्रमाणित है जैसी कि बच्चे की मान्यता नहीं है। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि अन्तर केवल यह नहीं हो सकता कि हमारी यह मान्यता सच है कि पृथ्वी सूर्य का परिक्रमण करती है क्योंकि, जैसा कि अध्याय 3 में बताया गया है, प्रमाणित होने के लिए एक मान्यता का सत्य होना आवश्यक नहीं है। कॉपरनिकन क्रान्ति, जिसमें यह खोजा गया कि

पृथ्वी सूर्य का परिक्रमण करती है, के हजारों साल पहले के लोग पूरी तरह सही थे यदि वे यह मान्यता रखते थे कि पृथ्वी सूर्य का परिक्रमण करती है।

अत:, ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकतर मामलों में अपनी मान्यता के पक्ष में कुछ न कुछ तर्क या आधार प्रस्तुत किए ही जा सकते हैं। अब इस मान्यता, कि पृथ्वी सूर्य का परिक्रमण करती है, के पक्ष में यह तर्क दिया जा सकता है कि यह विज्ञान की किताब में लिखा हुआ है, जिसे इस क्षेत्र के विशेषज्ञ द्वारा लिखा गया है। दरअसल, यहाँ अपनी इस मान्यता, कि पृथ्वी सूर्य का परिक्रमण करती है, का आधार अपनी एक अन्य मान्यता, कि यह दावा एक विश्वसनीय पुस्तक में पाया जा सकता है, को बनाया जा रहा है।

अपनी मान्यताओं को अन्य मान्यताओं का सहारा देने में समस्या इस प्रश्न का उठ खड़ा होना है कि जिन मान्यताओं द्वारा हम अन्य मान्यताओं को सहारा देने का प्रयास कर रहे हैं, उनके स्वयं के क्या आधार हैं? चूँकि हमने इस सम्भावना को पहले ही नकार दिया है कि कोई भी मान्यता, कम-से-कम कोई मुख्य मान्यता, बिना किसी आधार के प्रमाणित नहीं की जा सकती, इसका अर्थ यह है कि हमें मान्यताओं को सहारा देने वाली दूसरी मान्यताओं को सहारा प्रदान करना होगा। इसके अलावा, यदि हम यह मानते हैं कि यह मान्यताएँ जो किसी मौलिक मान्यता को बल देने का कार्य करती हैं, उन्हें भी प्रमाणित करने की आवश्यकता है, तो अब यदि ऐसी मान्यताओं को हम कोई सन्तोषप्रद आधार न दें पाएँ तो न तो मौलिक मान्यता और न ही उसे सहारा देने वाली मान्यताएँ प्रमाणित हो पाएँगी। यदि मैं यह मानूँ कि पृथ्वी सूर्य का परिक्रमण करती है : यह इसलिए सत्य है क्योंकि विज्ञान की पुस्तकों में ऐसा लिखा है, लेकिन विज्ञान की पुस्तकों में जो लिखा है उसे मानने का कोई सही कारण मेरे पास नहीं है तो शायद ही इस मान्यता को सन्तोषप्रद रूप से प्रमाणित माना जा सकता है कि पृथ्वी सूर्य का परिक्रमण करती है। समस्या यह है कि मैं जो भी आधार इस मान्यता को प्रमाणित करने के लिए प्रदान करूँ कि मैं विज्ञान की किताबों में लिखी बातें क्यों सत्य मान सकता हूँ, वह प्रत्येक आधार अपनी प्रामाणिकता के लिए किसी अन्य आधार पर निर्भर करेगा और हम उसी स्थिति में वापस पहुँच जाते हैं जहाँ से बात शुरू हुई थी (infinite regress)। एक बार यदि कोई व्यक्ति अपनी मान्यता के लिए किसी अन्य मान्यता का आधार प्रदान करना शुरू करता है, तो उसे अन्तहीन रूप से ऐसे हर आधार को अन्य आधार देते रहना पड़ेगा अन्यथा उस मूल मान्यता का कोई आधार नहीं होगा।

इस बात को और अच्छी तरह से समझने के लिए हम एक बार फिर मान्यता की तुलना घर के साथ करके देखते हैं। हमने पहले देखा कि ऐसा घर जो आधारहीन है, वह गिर जाता है। लेकिन, ऐसा घर जिसे किसी ऐसे आधार का सहारा मिलता है, जो पुन: किसी और सहारे पर टिका है और वह किसी दूसरे पर और फिर एक और पर, और इस तरह अनन्त आधारों पर, वह भी किसी बेहतर स्थिति में नहीं होगा। जब तक कि उस पूरी इमारत को सहारा देने वाला कोई आधार न हो, तब तक आधारों की एक अन्तहीन शृंखला भी उस इमारत को भरभराकर जमीन पर गिरने से रोक नहीं सकती है।

हम, बेशक, वास्तविक जीवन में अपनी मान्यता को एक निश्चित सीमा के बाद नए आधार देने में असमर्थ होंगे। इसके स्थान पर हम उन दावों की तरफ वापस लौटेंगे जो पहले ही किए जा चुके हैं। आपके यह मानने को क्या प्रमाणित करता है कि पृथ्वी सूर्य का परिक्रमण करती है? क्योंकि विज्ञान की किताबें ऐसा बताती हैं। विज्ञान की पुस्तकों में लिखी बातों को माना जाए, इसे कौनसी बात प्रमाणित करती है? क्योंकि स्कूल में आपकी विज्ञान की शिक्षिका ने यह विश्वास दिलाया था कि वे पुस्तकें इस तरह की सूचना की सही स्रोत हैं। आपकी विज्ञान की शिक्षिका सही कह रही हैं, इसमें आपके विश्वास को क्या बात प्रमाणित करती है? क्योंकि उन्होंने जो कहा वह विज्ञान की पुस्तकों में लिखी बातों से मेल खाता है। यहाँ हमारे पास प्रामाणिकताओं की एक ऐसी शृंखला है जिसमें मान्यता को सहारा देने वाला पूर्व में प्रस्तुत तर्क– विज्ञान की पुस्तकों पर भरोसा करना –घूम-फिरकर प्रमाणों की शृंखला में आगे फिर से प्रकट हो रहा है। लेकिन एक चक्रीय प्रमाण का शायद ही कोई औचित्य है।

एक बार फिर मान्यता की समानता घर के साथ करके देखें। यदि उस घर के आधार किन्हीं अन्य आधारों पर टिके हों और वे आधार पुन: उन्हीं मूल आधारों पर टिके हों, तब उस घर के अधिक देर तक टिके रहने की सम्भावना नहीं रह जाएगी। कुछ न कुछ ऐसा होना चाहिए जो सबकुछ को थामे रखे, किन्तु यहाँ पर यह काम कोई नहीं कर रहा है!

अगरिप्पा की त्रिविधा (Agrippa's Trilemma)

इस प्रकार, इस प्रश्न का उत्तर देने की लिए कि हमारी मान्यताओं का क्या प्रमाण है, हमारे सामने निम्नलिखित तीन अस्वीकार्य विकल्प हैं–

1. हमारी मान्यताएँ बिना किसी सहारे के हैं; अथवा

2. हमारी मान्यताएँ अन्तहीन प्रामाणिकताओं की एक शृंखला के सहारे हैं (यानी कि ऐसी शृंखला जिसमें सहारा देने वाला कोई भी आधार एक से अधिक बार नहीं आता है); अथवा
3. हमारी मान्यताएँ प्रामाणिकताओं की एक चक्राकार कड़ी के सहारे हैं (यानी कि ऐसा गोल घेरा जिसमें सहारा देने वाले आधार एक से अधिक बार आते हैं)।

यह सभी विकल्प स्वीकार्य नहीं हैं क्योंकि ऐसा मालूम पड़ता है कि इन सभी विकल्पों का तात्पर्य यह है कि हम अपनी मूल मान्यता को थामे रखने में पूरी तरह सही नहीं हैं। जैसे कि एक घर जिसका कोई आधार न हो अथवा एक जो अन्तहीन आधारों की कड़ी के सहारे हो, अथवा जो आधारों की एक चक्राकार शृंखला के सहारे हो, ऐसा घर खड़ा नहीं रह सकता और अन्तत: गिर जाएगा, ठीक उसी तरह एक मान्यता जो बिना किसी सहारे के हो (विकल्प 1) अथवा जो अन्तहीन आधारों की एक कड़ी के सहारे हो (विकल्प 2) अथवा जो आधारों की एक गोलाकार शृंखला के सहारे हो (विकल्प 3), वह अच्छी तरह से समर्थित नहीं होगी, और इसलिए अपने अन्त:बोध से हम जानते हैं कि ऐसी मान्यता पूरी तरह से प्रमाणित नहीं की जा सकती है।

प्रामाणिकता की संरचना की यह समस्या प्राचीन ग्रीक दार्शनिक अगरिप्पा के नाम पर 'अगरिप्पा की त्रिविधा' (Argippa's Trilemma) कहलाती है। त्रिविधा, दुविधा की तरह ही है; अन्तर सिर्फ इतना है कि यह तीन अस्वीकार्य विकल्पों में से चुनाव करने पर जोर डालती है, न कि सिर्फ दो विकल्पों में से जैसा कि दुविधा की स्थिति में होता है। इस पूरी पहेली का प्रयोजन यह है कि यह ज्ञान को ऐसे विभिन्न तरीकों से संरचित करने की तरफ हमारा ध्यान केन्द्रित करती है जिससे कि हम 'त्रिविधा' से बच सकें। ज्ञानमीमांसा के तीन विशिष्ट सिद्धान्त यहाँ प्रस्तुत हैं।

अनन्तवाद (Infinitism)

अगरिप्पा की त्रिविधा के प्रत्युत्तर में सबसे कम सम्भाव्य (और इसलिए ऐतिहासिक रूप से कम प्रचलित) विकल्प 2 है, और यह मानना है कि प्रामाणिकता की एक अन्तहीन कड़ी किसी मान्यता को प्रमाणित कर सकती है। यह विचार अनन्तवाद कहलाता है। सतही रूप से यह दृष्टिकोण अरक्षणीय है क्योंकि इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि जब एक घर को अनन्त आधारों

की शृंखला सहारा नहीं दे सकती तो फिर आधारों की अनन्त कड़ियाँ किसी मान्यता को कैसे सही ठहरा सकती हैं? फिर भी, इस दृष्टिकोण के कुछ समर्थक हैं, जो इस स्थापना को समर्थन देते हुए कहते हैं कि, यदि औचित्यहीन रूप से अन्तःबोध के विपरीत नहीं जाया जाए तो, यह स्पष्ट नहीं होता है कि क्यों आधारों की अनन्त शृंखला किसी मान्यता को प्रमाणित नहीं कर सकती है।

अगरिप्पा (लगभग 100 ईस्वी)

एक [पिरोनियन] संशयवादी, अपनी तरह का अनूठा प्रेमी होने के कारण, रूढ़िवादियों के आत्मदम्भ और अविवेक को वाणी से ठीक करने की इच्छा रखता है, जितना भी वह कर सकता है।

सेक्स्टस एम्पिरिकस, *आउटलाइंस ऑफ़ पिरोनिज़्म*

अगरिप्पा प्राचीन ग्रीक दार्शनिकों के उस समूह से सम्बन्ध रखते हैं जिन्हें पिरोनियन संशयवादी (Pyrrhonian sceptics) कहा जाता है। उनके विषय में अधिक जानकारी हासिल नहीं है क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने, दूसरे संशयवादी दार्शनिकों की तरह ही, स्वयं बहुत कम लिखा है। वास्तव में, इसका कारण यह है कि ऐसे दार्शनिक यह नहीं सोचते कि उन्हें कुछ दावा करना चाहिए और इसीलिए वे ऐसा बिल्कुल नहीं सोचते कि आने वाली पीढ़ियों के लिए उन्हें अपने दार्शनिक विचारों को लिखकर रखना चाहिए। दरअसल, हम जो भी अगरिप्पा के विषय में जानते हैं वह उनकी त्रिविधा से सम्बन्धित है, जो कि प्राचीन ग्रीक इतिहासकार डायोजनीज़ लिअर्शस (लगभग 250 ईस्वी) ने यूनानी दर्शन के इतिहास पर अपनी रचना में लिखा है। इस पुस्तक में, जैसा कि पिरोनियन संशयवादियों के विषय में एक दूसरे स्रोत– सेक्ट्स इम्पीरीटस (लगभग 200 ईस्वी) के द्वारा लिखी गई *आउटलाइन ऑफ़ पिरोनिज़्म* में भी है –अगरिप्पा की संशयवादी रणनीति दरअसल पाँच संशयवादी रणनीतियों के रूप में अभिव्यक्त की गई है, जो कि संशय उत्पन्न करने के लिए संरचित की गई हैं। चूँकि इनमें से तीन ऐसी रणनीतियाँ हैं जो असल संशयवादी खतरा उत्पन्न करती हैं, अगरिप्पा की संशयवादी चुनौती को उन्हीं के रूप में समझ लिया गया और इसीसे हमें अगरिप्पा की त्रिविधा प्राप्त होती है जिसका यहाँ वर्णन किया गया है।

जगह की कमी के कारण यहाँ हम इस दृष्टिकोण पर ध्यान केन्द्रित करने के बजाय प्रामाणिकता, और फलस्वरूप ज्ञान, के दो सिद्धान्तों पर गौर करेंगे जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक चर्चित रहे हैं।

सुसंगततावाद (Coherentism)

अगरिप्पा की त्रिविधा का एक अधिक विश्वसनीय (और अधिक चर्चित) प्रत्युत्तर विकल्प 3 को मानते हुए कहता है कि सहारा देने वाले आधारों की एक गोलाकार कड़ी किसी मान्यता को प्रमाणित कर सकती है। इस दृष्टिकोण को सुसंगततावाद कहते हैं, जो कि आमतौर पर इस मत को मानता है कि यदि प्रामाणिकता के चक्र को किसी मान्यता को आधार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है तो इसे सन्तोषजनक रूप से बड़ा होना चाहिए, अत: यह मत इस बात को मानता है कि प्रामाणिकता के छोटे घेरे ऐसा नहीं कर सकेंगे। फिर भी, सुसंगततावाद का तालमेल इस सामान्य सोच के साथ बिठाना कठिन है कि प्रामाणिकता का चक्र चाहे जितना भी बड़ा हो, वह किसी मान्यता को बिल्कुल सहारा नहीं देता है।

सुसंगतता की अभिप्रेरणा का एक हिस्सा कुछ हद तक व्यावहारिक है : ऐसा इस अर्थ में कि सुसंगततावादियों का दावा है कि हम वास्तव में अपनी मान्यताओं को उसी तरह से प्रमाणित करते हैं जिस तरह वे हमारी अन्य मान्यताओं को निरूपित करती हैं; किसी विशिष्ट प्रस्थापना में विश्वास करने के हमारे आधारों में अक्सर निहित रूप से हमारी अन्य मान्यताओं का एक सामान्य तानाबाना (नैटवर्क या 'वैब') शामिल होता है। हमारे इस विचार को प्रकट करने का एक तरीका यह हो सकता है कि हमारी विशिष्ट मान्यताएँ हमारे आम वैश्विक दृष्टिकोण (general world-view) को प्रतिबिम्बित करती हैं। मैं दुनिया को वैसे ही अनुभव करता हूँ जैसे करता हूँ– इस तरह कि मैं अनायास ही उस दुनिया के बारे में मान्यताएँ बनाता हूँ –यह इसी वैश्विक दृष्टिकोण का परिणाम है।

डब्ल्यू वी ओ क्वाइन (1908-2000)

कोई भी प्रकथन/वाक्य पुनरीक्षण से प्रतिरक्षित नहीं है।

क्वाइन, *अनुभववाद के दो सिद्धान्त (Two Dogmas of Empiricism)*

अमरीकी दार्शनिक, विलार्ड वान ओमन क्वाइन, निस्सन्देह 20वीं शताब्दी के दर्शन के अत्यन्त उत्कृष्ट दार्शनिक माने जाते हैं। क्वाइन द्वारा किए गए कार्यों का मार्गदर्शक विषय डेकार्त के 'प्रथम दर्शन' को नकारना था, जिसे ऐसे दृष्टिकोण के रूप में समझा जाता है जो वैज्ञानिक अन्वेषण से पहले का है, और उससे पूर्णतः स्वतन्त्र है, और इससे विज्ञान का मूल्यांकन किया जा सकता है। क्वाइन ने ऐसे दावों– जैसे कि दार्शनिक दावे –के होने के विरोध में तर्क दिया जिन्हें भविष्य के विज्ञान द्वारा, सिद्धान्ततः भी, संशोधित नहीं किया जा सकता हो।

ऐसा दृष्टिकोण स्वाभाविक तौर पर सुसंगततावाद के साथ-साथ चलता है, जहाँ किसी भी मान्यता की ज्ञानमीमांसीय प्रतिष्ठा पूरी तरह से किसी की मान्यताओं के संजाल पर निर्भर करती है, और जहाँ कोई भी एक मान्यता ज्ञानमीमांसा की अन्य मान्यताओं से अलग नहीं होती है।

सुसंगततावाद से अलावा क्वाइन ने दर्शन के दूसरे क्षेत्रों जैसे कि तर्कशास्त्र, भाषाशास्त्र, तत्वमीमांसा, और सत्य के दर्शन में भी उल्लेखनीय योगदान दिया।

उदाहरण के लिए, मुझमें और किसी ऐसे व्यक्ति में अन्तर पर विचार करें, जो कई सौ साल पहले जीवित रहा हो और जो यही सोचता रहा हो कि सूर्य पृथ्वी का परिक्रमण करता है न कि पृथ्वी सूर्य का। उसके वैश्विक दृष्टिकोण में प्रत्येक सुबह सूर्य को उदय होते हुए देखना इस तथ्य की पुष्टि है कि पृथ्वी सूर्य की कक्षा का केन्द्र है। जबकि इसके विपरीत, मेरे जैसा कोई व्यक्ति जो वर्तमान समय में जी रहा हो और जो भली-भाँति यह जानता हो कि पृथ्वी सूर्य का परिक्रमण करती है, वह हर सुबह सूर्य के उदय होने को उस नजरिए से नहीं देखेगा। हममें से हर एक का अलग तरह का वैश्विक दृष्टिकोण है जो हमारी अनायास ही बनने वाली मान्यताओं का आधार है। यहाँ देखने योग्य बात यह है कि हालाँकि 'कॉपरनिकन क्रान्ति' से पहले के उस व्यक्ति की मान्यताएँ गलत हैं, फिर भी उन्हें स्वीकार्य इसलिए माना जा सकता है क्योंकि वह मान्यता अन्य कई मान्यताओं की पृष्ठभूमि पर आधारित है जिन्हें वह मानता है। यह देखते हुए कि उस व्यक्ति की मान्यता उसके वैश्विक दृष्टिकोण पर आधारित है और अन्य मान्यताओं का जाल इस वैश्विक दृष्टिकोण का निर्माण करता है, उसका यह सोचना कि सूरज के रोज सुबह उदय होने का अर्थ है कि पृथ्वी सूरज की कक्षा का केन्द्र है, अपनी जगह बिल्कुल उचित है।

फिर भी, यदि तथ्य यही है कि साधारण तौर पर हम अपनी मान्यताओं का निर्माण इसी तरह करते हैं– यानी हमारे वैश्विक दृष्टिकोण को बनाने वाली मान्यताओं के संजाल का संकेत रूप

में इस्तेमाल करके –तो भी यह तथ्य अपनेआप में यह सुनिश्चित नहीं करता है कि ऐसा करने में हम सही हैं। शायद हम अपनी मान्यताओं का निर्माण करने में पर्याप्त सतर्कता नहीं बरतते हैं और यह सतर्कता की कमी इसमें परिलक्षित होती है कि हम कितनी आसानी से किसी वैश्विक दृष्टिकोण के प्रति अपनी धारणा बना लेते हैं। आखिरकार लोगों को कॉपरनिकस-पूर्व की पृथ्वी और सूर्य की पारस्परिक क्रियाओं की समझ को छोड़ने में काफी वक्त लगा, जिससे यह प्रश्न उठता है कि यदि लोग अपने वैश्विक दृष्टिकोण और उसे बनाने वाली धारणाओं को लेकर ज्यादा समीक्षात्मक होते तो पृथ्वी के सूर्य से सम्बन्ध की गलत समझ कहीं जल्दी ठीक हो जाती। संक्षेप में कहें तो यह सच है कि हम सभी में किसी विशिष्ट तरह से मान्यताएँ बनाने की प्रकृति है, परन्तु उसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि हमें इसी तरह से मान्यताएँ बनानी चाहिएँ।

सुसंगततावाद के अभिप्रेरक केवल व्यावहारिक नहीं हैं, फिर भी चूँकि चर्चा का एक हिस्सा वैकल्पिक सिद्धान्तों की असम्भाव्यता को भी दर्शाता है इसलिए यह जरूरी है कि प्रामाणिकता को हम इसी तरह से समझें। हमने पहले देखा कि अनन्तवाद वह दृष्टिकोण है जो अन्तःबोध पर आधारित नहीं है (हालाँकि ऐसा कहने का यह मतलब नहीं कि यह गलत है), अत: हमें तीसरे– और निश्चिय ही ऐतिहासिक तौर पर सबसे प्रचलित –विकल्प के बारे में विचार करना होगा।

आधारवाद (Foundationalism)

यह विकल्प आधारवाद के नाम से जाना जाता है और, विकल्प 1 के अनुरूप, यह अगरिप्पा की त्रिविधा का प्रत्युत्तर देता है कि अन्य मान्यताओं को आधार बनाए बिना भी कभी-कभी किसी मान्यता को प्रमाणित किया जा सकता है। सतही रूप से एवं ऊपर दिए गए कारणों की वजह से यह दृष्टिकोण समस्यात्मक दिखाई दे सकता है क्योंकि जिन मान्यताओं को मानने का कोई उपयुक्त आधार नहीं हो– जैसे कि किसी बच्चे का यह मानना कि चाँद एक गुब्बारा है –वे ऐसी मान्यताएँ नहीं हैं जिन्हें प्रमाणित किया जा सकता है। परन्तु, आधारवाद का प्रमुख स्वरूप जो तर्क देता है वह यह है कि कुछ मान्यताओं को प्रमाणित करने की जरूरत इसलिए नहीं है क्योंकि वे एक तरह से स्व-प्रमाणित हैं। इस तरह के आधारवाद को 'शास्त्रीय आधारवाद' कहा जाता है और यह तर्क देता है कि ज्ञान की संरचना इस प्रकार से हुई है कि मान्यताओं

की शृंखला का अन्त किसी खास स्व-प्रमाणित आधारवादी मान्यताओं पर होता है जिन्हें आगे और किसी आधार की आवश्यकता नहीं होती।

सम्भवत: शास्त्रीय आधारवाद के सबसे मशहूर प्रतिपादक देकार्त हैं, जिन्हें हमने पिछले अध्याय में पढ़ा है। देकार्त का तर्क था कि हमारे ज्ञान का आधार वे मान्यताएँ हैं जो सन्देह-मुक्त हैं, और बिल्कुल निश्चित एवं स्व-प्रमाणित सत्य हैं। इस तरह की मान्यता का जो उदाहरण उन्होंने दिया, वह था किसी व्यक्ति की खुद के अस्तित्व की मान्यता। जैसा कि देकार्त कहते हैं कि ऐसी मान्यता सन्देह से परे है क्योंकि इसपर सन्देह करने से व्यक्ति यही प्रमाणित करता है कि वह इसपर सन्देह करने के लिए जीवित है, और इसलिए यह प्रमाणित करता है कि यह मान्यता सत्य है। इसीलिए ऐसी मान्यता अपनी प्रकृति से ही स्व-प्रमाणित है, और इसलिए इसे प्रमाणित करने के लिए अन्य किसी आधार की आवश्यकता नहीं है। एक अर्थ में, इस कथन में किसी का विश्वास सम्भवतः अचूक है और उसमें इस सम्बन्ध में त्रुटि नहीं हो सकती है। यदि यह सही है तो इस मान्यता के साथ समाप्त होने वाली प्रमाणों की कोई भी शृंखला इस बिन्दु पर आकर पूर्णतः रुक जाएगी।

रेने देकार्त (1596-1650)

मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ।
(cogito ergo sum)

देकार्त, *डिस्कोर्स ऑन मेथड*

फ़्रेंच दर्शनशास्त्री एवं गणितज्ञ, रेने देकार्त, आधुनिक दर्शनशास्त्र के जनकों में से एक हैं। उनके द्वारा किया गया सबसे मशहूर कार्य *मेडिटेशंस ऑन फ़र्स्ट फ़िलॉसॉफ़ी* है, जिसमें वे अन्य विषयों के साथ ज्ञानमीमांसा की ओर बढ़ने का एक मूलत: नवीन तरीका प्रस्तुत करते हैं।

देकार्त के अनुसार अपने ज्ञान को सुरक्षित आधार देने के लिए उसे 'सन्देह की विधि' से गुजारना चाहिए। इसके अन्तर्गत किसी भी मान्यता पर इस हद तक सन्देह करना होता है जब तक वह बिन्दु न आ जाए जहाँ कोई सन्देह न रह जाए, और तब ज्ञानमीमांसीय सुदृढ़ता के साथ वह आधार मिल जाता है जिसपर किसी भी ज्ञान की नींव रखी जा सकती है। इस हेतु देकार्त मौलिक 'सन्देहवादी परिकल्पना' पेश करते हैं– ऐसे परिदृश्य जिनका स्वाभाविक अनुभवों से पता नहीं लगाया जा सकता किन्तु उसमें व्यक्ति मौलिक रूप से त्रुटि में होता है, जैसे कि व्यक्ति के अनुभव एक सपने का उत्पाद हैं –यह पता लगाने के लिए कि उनकी कौनसी मान्यताएँ सन्देह

से मुक्त थीं। अपनी 'सन्देह की विधि' से देकार्त इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ज्ञान का संशयहीन आधार हमारी अपने अस्तित्व में मान्यता में है, चूँकि अपने अस्तित्व पर सन्देह करने से हम यह साबित करते हैं कि हमारा अस्तित्व है (वरना हम उसपर सन्देह कैसे कर सकते हैं?)। इसलिए उनका मशहूर दावा है– "मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ"।

विडम्बना यह है कि देकार्त ने जिन मजबूत सन्देहवादी तर्कों की खोज की, उनका प्रभाव उनके बाद के गैर-सन्देहवादी तर्कों से अधिक पड़ा। तदनुसार, हालाँकि ज्ञान की सम्भावना के बारे में हमें सन्देहवादी बनाना उनका उद्देश्य नहीं था, परन्तु उनका ज्ञानमीमांसीय अन्वेषण वास्तव में यही हासिल कर पाया।

ज्ञानमीमांसा के उनके कार्यों के अतिरिक्त, देकार्त ने दर्शनशास्त्र के लगभग सभी क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इसके साथ ही, उन्होंने विज्ञान और गणित के सवालों पर, उदाहरणस्वरूप ज्यामिति में, भी शोध करते हुए दीर्घकालीन योगदान किया।

शास्त्रीय आधारवाद के सामने सबसे बड़ी समस्या ऐसी स्व-प्रमाणित मान्यताओं की पहचान करना है जो आधार बन सकें; अथवा जो कम से कम ऐसी आधारभूत मान्यताओं के बारे में बता सकें जो अनावश्यक तौर पर प्रतिबन्धात्मक नहीं हों। इसमें मुश्किल यह है : ऐसा प्रतीत होता है कि यदि हमें आधारवादी मान्यताओं को गैर-आधारभूत मान्यताओं के लिए आधार बनाने देना है तो आधारवादी मान्यताओं पर कुछ सख्त प्रतिबन्ध लगाने होंगे। परन्तु, आधारवादी मान्यताओं पर प्रतिबन्ध ज्यादा सख्त होने पर हमें मान्यताओं का ऐसा समुच्चय मिलेगा जो बहुत ही संकीर्ण होगा।

उदाहरण के लिए, यदि कोई यह तर्क देता है कि आधारभूत मान्यताएँ वे मान्यताएँ होनी चाहिएँ जो अखण्डनीय हों –अर्थात ऐसी मान्यताएँ जो गलत हो ही नहीं सकती हैं –क्योंकि त्रुटि के प्रति इस प्रकार की प्रतिरक्षा ही यह सुनिश्चित करेगी कि इन मान्यताओं को किसी भी अन्य मान्यताओं पर निर्भरता के बिना उचित ठहराया जा सकता है। इस प्रकार, विचार यह होगा कि किसी भी व्यक्ति के दैनिक जीवन की अप्रामाणिक मान्यताओं की ज्ञानमीमांसीय अवस्था को, जो कि त्रुटिपूर्ण हो सकती है, उन अखण्डनीय आधारभूत मान्यताओं तक वापस ढूँढा जाए जहाँ प्रामाणिकता का प्रतीपगमन (regress of justification) समाप्त हो जाता है।

हालाँकि, समस्या यह है कि बहुत कम मान्यताएँ हैं (यदि हैं भी) जिनके बारे में हम त्रुटिरहित हैं, और इस सन्दर्भ में जो मान्यताएँ उपयुक्त हैं वे हमारे दैनिक जीवन की अधिकतर अन्य मान्यताओं को सहारा देने का काम करती प्रतीत नहीं होती हैं। उदाहरण के लिए, मेरी यह मान्यता कि 'दो और दो का जोड़ चार होता है' एक ऐसी मान्यता है जो कभी गलत नहीं हो सकती क्योंकि यह अत्यधिक स्पष्ट है कि मैं इसमें गलत कैसे हो सकता हूँ (हालाँकि कुछ बुद्धिमत्ता के साथ हम ऐसे मामलों के बारे में सोच सकते हैं जिनमें यह मान्यता भी तार्किक तौर पर सन्देहास्पद हो सकती है)। यदि यह सही भी है तो भी यह स्पष्ट नहीं है कि यह दुनिया से सम्बद्ध उन अन्य असंख्य मान्यताओं को कैसे सहारा दे सकती है जिनपर मैं विश्वास करता हूँ– जैसे कि मैं अपनी डेस्क पर बैठा हूँ –चूँकि इसका दो और दो का जोड़ चार है वाली मेरी गणितीय मान्यता से कोई सम्बन्ध नहीं है।

यही तर्क हमारे अस्तित्व के होने की मान्यता पर भी लागू होता है, जैसा कि हमने देकार्त के शास्त्रीय आधारवाद में देखा। दुनिया के विषय में मेरी अनेक व्यापक मान्यताएँ इस तरह की कुछ संकीर्ण मान्यताओं पर कैसे निर्भर कर सकती हैं? ऐसा प्रतीत होता है कि इस समस्या का हल सिर्फ शास्त्रीय मान्यताओं हेतु निर्धारित की गई आवश्यकताओं को कमजोर या कम करके किया जा सकता है, शायद यह मानकर कि वे त्रुटिपूर्ण मान्यताएँ भी हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, किसी की उसके तात्कालिक अनुभव के विषय में मान्यताओं– कि दुनिया उसे कैसी प्रतीत होती है –को एक आधारभूत मान्यता के रूप में माना जा सकता है। हालाँकि, इस दृष्टिकोण के साथ समस्या है : यह समझाना कठिन है कि सर्वप्रथम तो इस तरह की मान्यताओं को आधारभूत मान्यताएँ क्यों माना जाए (जबकि इस तरह की मान्यताएँ पूर्णत: त्रुटिरहित नहीं हैं)। इस तरह हम यहाँ दो अस्वीकार्य विकल्पों के बीच फँस जाते हैं। या तो हम आधारभूत मान्यताओं हेतु आवश्यकताओं का बहुत उच्च निर्धारण करें जिससे कि वे अखण्डनीय हों, लेकिन तब हम यह समझाने की समस्या का सामना करेंगे कि आधारभूत मान्यताओं का ऐसा संकीर्ण समुच्चय सभी गैर-आधारभूत मान्यताओं की नींव के रूप में कैसे काम कर सकता है; या फिर हम आधारभूत मान्यताओं हेतु आवश्यकताओं का बहुत निम्न निर्धारण करें, लेकिन तब हम यह समझाने की समस्या का सामना करेंगे कि आखिर क्यों ऐसी मान्यताओं को आधारभूत माना जाना चाहिए।

इस प्रकार, यह स्पष्ट नहीं है कि आधारवाद के किसी स्वरूप को स्वीकारने पर हमें अगरिप्पा की त्रिविधा द्वारा प्रस्तुत समस्याओं का कोई ऐसा समाधान मिलता है जो कि अन्य मानक प्रत्युत्तरों, जैसे सुसंगततावाद या अनन्तवाद, से बेहतर हो।

पाठ सारांश

- हमने इस बात पर ध्यान देते हुए प्रारम्भ किया था कि, अन्त:बोध से, यदि हमें ज्ञान प्राप्त करना है तो अपनी मान्यताओं (beliefs) में हमें प्रामाणिक होना होगा। अत: हमने यह प्रश्न किया कि प्रामाणिकता (justification) क्या है।
- अगरिप्पा की त्रिविधा (Agrippa's trilemma) के अनुसार, इस सन्दर्भ में केवल तीन विकल्प हैं जिनमें से कोई भी सतही रूप से स्वीकार्य नहीं है। पहला विकल्प यह कहता है कि किसी भी मान्यता को प्रमाणित करने के लिए किसी अन्य आधार की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। इस विकल्प की समस्या प्रत्यक्षतः यह है कि यदि किसी मान्यता का कोई आधार ही नहीं दिया जाता है, तब वह किस प्रकार प्रमाणित की जा सकती है? (इसे दिखाने के लिए हमने मान्यता की समानता एक घर से की थी। एक ऐसा घर जिसका कोई आधार नहीं हो वह टिका नहीं रह सकता है।) दूसरे विकल्प के तहत किसी मान्यता को किसी और आधार पर प्रमाणित किया जाए; यह आधार, सम्भवतः, अपनेआप में एक अन्य मान्यता होगा। इस विकल्प की कठिनाई यह है कि इस अन्य मान्यता को भी प्रमाणित करना होगा, चूँकि यदि मूल मान्यता किसी अन्य अप्रामाणिक आधार के सहारे टिकी है तब यह मानना मुश्किल होगा कि ऐसे में दूसरी मान्यता पहली मान्यता को सहारा कैसे दे सकती है। परन्तु, यदि दूसरी मान्यता को उचित ठहराने की आवश्यकता है तो उस मान्यता को स्वयं किसी अन्य मान्यता द्वारा समर्थित होने की आवश्यकता होगी, और यह इस तरह अनन्त रूप से चलता रहेगा। इस तरह, एक अनन्त प्रतिपगमन (infinite regress) होता रहेगा। (फिर से घर के साथ तुलना पर विचार करें। नींवों की एक अन्तहीन शृंखला वाला घर खड़ा नहीं रह सकेगा।) अन्त में, तीसरा विकल्प है प्रमाणों की कड़ी में किसी बिन्दु पर ऐसी सहायक मान्यताओं को स्वीकार करना जो कि इस कड़ी में किसी अन्य स्थान पर आती हैं। इस प्रकार, यह विकल्प चक्रीय प्रामाणिकता को स्वीकार करता है। हालाँकि यह तीसरा विकल्प भी उतना स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि प्रामाणिकता की चक्रीय शृंखला कोई भी प्रामाणिकता नहीं होने से कतई बेहतर नहीं है। (मान्यता और घर की तुलना पर पुन: लौटते हुए, एक घर जिसके आधारों का चक्रीय समुच्चय हो और कोई भी आधार अन्य सभी आधारों को सहारा नहीं देते हों, तो वह घर नहीं टिकेगा।) अत:, इस बात को पूर्णत: समझना मुश्किल है कि किसी मान्यता को किस प्रकार प्रमाणित किया जा सकता है।

- अगरिप्पा की त्रिविधा के जवाब में हमने तीन विकल्पों को देखा, जिनमें से हर एक ने ऊपर बताए हुए कोई न कोई अस्वीकार्य विकल्पों में से एक को लिया। पहला विकल्प अनन्तवाद (Infinitism) का था, जो यह कहता है कि आधारों की अनन्त शृंखला किसी मान्यता को प्रमाणित कर सकती है।
- दूसरा विकल्प सुसंगततावाद (Coherentism) का था, जिसकी पैरवी क्वाइन (Quine) ने की, जिसके अनुसार आधारों की चक्राकार शृंखला, जब तक कि किसी भी दर पर सही प्रकार के गुण रखती है (जैसे, काफी बड़ा होना), किसी मान्यता को सही ठहरा सकती है।
- अन्ततः, हमने आधारवाद (Foundationalism) और खास तौर पर शास्त्रीय आधारवाद (Classical Foundationalism) को देखा– जिसकी पैरवी देकार्त (Descartes) ने की – जिसके अनुसार ऐसे कुछ आधार हैं जिन्हें किसी और सहारे की आवश्यकता नहीं है, और इसलिए यह आधार ऐसी मान्यताओं के लिए नींव के रूप में कार्य कर सकते हैं जो उनपर आधरित होती हैं। हमने देखा कि शास्त्रीय आधारवाद की विशिष्टता है कि यह 'आधारभूत' मान्यताओं में ऐसे गुण होना मानता है जो यह सुनिश्चित करते हैं कि वे स्व-प्रमाणित हैं– जैसे कि संशयहीन व त्रुटिरहित होने का गुण। हालाँकि, इस दृष्टिकोण के सामने समस्या यह है कि इन आधारभूत मान्यताओं का ऐसा विवरण ढूँढ़ना मुश्किल है जो सम्भाव्य हो और साथ ही हमारी मान्यताओं की पर्याप्त संख्या को आधारभूत माना जा सके ताकि वे हमारी अन्य मान्यताओं का समर्थन कर सकें।

अध्ययन के प्रश्न

1. अपने शब्दों में बताएँ कि अगरिप्पा की त्रिविधा क्या है? अपनी एक मान्यता पर विचार करें और फिर इस मान्यता पर प्रश्न करने के लिए अग्रिप्पा की त्रिविधा का उपयोग करने का प्रयास करें (आपके लिए इसे एक मित्र के साथ आजमाना उपयोगी हो सकता है)।
2. अनन्तवाद क्या है, और यह अगरिप्पा की त्रिविधा का जवाब कैसे देता है? इसके साथ, यदि कुछ गलत है तो, क्या गलत है?
3. सुसंगततावाद क्या है, और यह अगरिप्पा की त्रिविधा का प्रत्युत्तर कैसे देता है? सुसंगततावाद के कुछ प्रवर्तकों द्वारा किए गए दावे– कि यह अपनी मान्यताओं को प्रमाणित करने के लिए सबसे अच्छी व्याख्या प्रदान करता है –के बारे में आपका क्या विचार है? क्या आप इससे सहमत हैं? यह मानते हुए कि यह सच है, क्या आपको लगता है कि यह तथ्य प्रासंगिक है कि सुसंगततावाद सत्य है या नहीं?

4. आधारवाद क्या है, और यह अगरिप्पा की त्रिविधा का जवाब कैसे देता है? अपने शब्दों में स्पष्ट करें कि शास्त्रीय आधारवाद के अनुसार आधारभूत मान्यताओं में कौनसे गुण होने चाहिएँ, और अपने स्वयं की मान्यताओं के तीन उदाहरण दें जिनमें यह गुण हों।

5. देकार्त ने क्यों सोचा कि उसकी स्व के अस्तित्व की मान्यता एक आधारभूत मान्यता थी? क्या इस प्रकार की आधारभूत मान्यताएँ दुनिया के बारे में आपकी अन्य मान्यताओं को समर्थन प्रदान कर सकती हैं? यदि हाँ, तो समझाएँ कि कैसे? यदि नहीं, तो बताएँ कि क्यों?

•